वैखानसीय मन्त्र विमर्श

Shitala Prasad Pandey

Department of Dharmagam, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

"Mantras" are the very essintial part of Indian life from the ancient time in Veda, "Mautras" are used in different context. Generally theyare used as prayer, stutigan, discussions, Pavitravani, Planning and Yagyen Vadya etc.

Maharshi Marichi discussed very deeply the use of Mautras in the rituals in his book. Discuss that 'Pranava' is Simlar to Sri Mannaarayara and 'a' is the super power, 'o' is the goddess Laxmi and 'm' is the living being of word Om.

Generally all the "Mantras" have Rishi omnipotent, chanda Gayatri, and God Narayana. Use of Mantras can be seen at the time of inaugral rituals, especially.

प्राचीन काल से ही 'मन्त्र' भारतीय जीवन पद्धति के साथ अभिन्न रूप से संलग्न रहे हैं। गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि संस्कार पर्यन्त सभी संस्कारों एवं जीवन की अन्यान्य समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय मानस ने सदा ही मन्त्र विद्या का सहारा लिया है। समस्त वैदिक वाङ्मय तथा तान्त्रिक साहित्य इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

तन्त्र विधान में तो मन्त्र ही मुख्यमन्त्री होता है। सभ्यता के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद में मन्त्र का बहुशः प्रयोग परिलक्षित है।[१] वेद में मन्त्र शब्द विविध अर्थो में प्रयुक्त है। सामान्यतः प्रार्थना, स्तुतिगान, मन्त्रणा, पवित्रवाणी, योजना तथा यज्ञवाक्य आदि अर्थो में प्रयुक्त है, किन्तु प्रमुखतया ऋषियों द्वारा स्तुति या प्रार्थना विशेष में है।[२] यास्क के अनुसार ***''मननात् मन्त्रः''*** अर्थात् जिसका मनन किया जाता है उसे मन्त्र कहते हैं।[३]

विश्व में विद्यमान प्राचीन समुन्नत समाज के आचार-विषयक इतिहास के अवलोकन से यह बात साफ हो जाती है कि उस समाज में विविध संस्कारों के अवसर पर तत्तद्विशिष्ट कर्म के साथ विशिष्ट प्रार्थनाएँ की जाती थीं। डॉ. कृष्णालालीजी के कथनानुसार वेद के देवशास्त्र तथा अव्यस्ता (अवेस्ता) के देवशास्त्र में साम्य है। वैदिक एवं आव्यस्तिक समाज के कर्मकाडों का साम्य इसमें दिखलाई पड़ता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीयों तथा ईरानियों से पृथक् होने के काल से पूर्व ही बहुत सारे मन्त्रोच्चारपूर्वक प्रतिपाद्य यागकर्मों का पूर्ण विकास था।[४] इस प्रकार मन्त्र-प्रयोग की प्राचीनता निर्विवाद है।

वैखानस संप्रदाय से संबद्ध वैष्णवों के लिए प्रचलित क्रिया-कलापों के निष्पादन में शुद्धरूप से वैदिक मन्त्रों का विधान है इसीलिए वैखानसों के यहाँ पाञ्चरात्रिकों की भाँति कहीं भी ***ह्रीं, फट्*** तथा वौषट् आदि तान्त्रिक मन्त्रों का विनियोग नहीं मिलता है। यही दोनों सम्प्रदायों में अन्तर है। वैखानस ग्रन्थों में पाञ्चरात्रादि आगमों की तरह मातृकाचक्र या मन्त्रोद्धार के लिए कोई विशेष विवरण नहीं मिलता, तथापि मन्त्र से संबद्ध विषय पर कुछ विचार निश्चित रूप से प्राप्त होते है। वैखानस गृह्यसूत्र में सांप्रदायिक अष्टाक्षरी तथा द्वादशाक्षरी मन्त्रों का जप-विधान विहित है- ***ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो नारायणय।***[५]

महर्षि मरीचि ने अपने ग्रन्थ में ***''अथातो मन्त्राणां कल्पं व्याख्यास्यामः''*** इस प्रतिज्ञावाक्य के साथ मन्त्र विषय पर गम्भीरता से विचार किया है। महर्षि का मानना है कि ***ओमिति ब्रह्म*** इस श्रुति सम्मत आधार पर मन्त्रों का प्राण 'प्रणव' ब्रह्मस्वरूप है। अस्तु, सारा संसार प्रणव से पृथक नहीं है। ईश्वर ही प्रणव के रूप में जाना जाता है। प्रणव को त्र्यक्षर- अकार, उकार तथा मकार- स्वीकारा गया है। तीनों क्रमशः ऋग्, यजुष तथा साममय हैं। ये क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण बताए गए है। इनके वर्ण श्वेत, पीत तथा कृष्ण हैं। भूर्भुवः तथा स्वः में तीनों की क्रमशः स्थिति वर्णित है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव तीनों के देवता हैं। तीनों के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए, अकार को वलयाकार, उकार को कुटिलाकार तथा मकार को बिंदुनाद बताते हुए तीनों को प्रणव का लिपि-अंश कहा गया है। अकार, उकार के गुण के अनन्तर संयोग से ओंकार बिंदुनाद

Vijana Bharati

संयोग से प्रणव का 'ॐ'- यह रुप है।[६] प्रणव के प्रजापति ऋषि, गायत्रीछन्द, तथा ब्रह्मा अधि देवता है।[७] इसका गोत्र अथर्वन् है।[८]

प्रणव के अंशभूत लिपि आदि के विवेचनोपरान्त महर्षि मरीचि के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं कि प्रणव का वर्ण पीत है। यह सहस्रबाहु, सहस्राक्ष, सहस्रोदर, सहस्रपाद, ऊर्ध्वकेश, रक्तास्यपाणिपाद, शुकपिच्छाम्बरधर विष्णु जीवात्मा, ब्रह्मा बुद्धि, ईश कोप, चित्त सोम, अतलादि सात, पाद, भुजंग अंगुलियाँ, नदियाँ अप्सराएँ, भूरादि सात लोक कुक्षि है। वसु नाभि, महाण्ड बहिरण्ड तथा वैष्णवाण्ड शीर्ष अग्निष्टोमादि यज्ञ केश, व्योम ललाट, भ्रुवौ मेधा, चन्द्र और अर्क दोनों नेत्र, शुक्र तथा बृहस्पति दोनो कान, अश्विनिकुमारद्वय नासिका, वायु दन्त, सरस्वती जिह्वा, दोनों संध्या के नित्याग्निहोत्र ओष्ठ, सभी अग्नियाँ वदन, शचीपति ग्रीवा, दिशाएँ बाहु, सभी रुद्र संधियाँ, नक्षत्रगण अंगुलियाँ, तारागण नख, मित्रावरुण वृषण, प्रजापति उपस्थ, मरुत् पृष्ठ, पर्वत अस्थिाँ, मन्दर मांस, ओषधियाँ शोणित, प्रलयशिरा नदियाँ, समुद्र मूत्रकोश, कोचन पुरीष, अमृत रेतस्, लोकालोक त्वक्, ऋषिगण रोमकूप, वर्षा स्वेद, सर्वौषधियाँ वसन, वेदेतिहास आभरण, सृष्टि, स्थिति क्रीडा, कल्पव्याकरणनिरुक्तादि चतुः षष्टिकलाएँ व्याख्यानरूप बताए गए है। महार्षि मरीचि का अभिमत है कि बहुत भाषण से क्या ? संपूर्ण संसार और सृष्टि को प्रणव से पैदा हुआ मानकर यथाशक्ति प्रणव का जप करना चाहिए। प्रणव को एकमात्र या त्रिमात्र रूप में सभी मन्त्रों के जपारम्भ में, तीन बार उच्चारित करना चाहिए। समाप्ति में भी यही विधान है। प्रणव के बिना सभी जप नष्ट हो जाते है। अस्तु, प्रणव के बिना कोई अन्य मन्त्र नही हैं।[९]

महार्षि काश्यप द्वारा प्रणीत वैखानस आगम के ज्ञानकाण्ड के अष्टाक्षर कल्प में प्रणव का वर्णन आया है। महर्षि मरीचि की अपेक्षा कई बातों में समानता रहते हुए भी कुछ बातें इस तन्त्र में अधिक स्पष्ट है, जैसे- इसमें मन्त्र की उत्पति साक्षात् विष्णु के मुख से मानी गयी है। वह इनके (विष्णु के) मुख से च्युत है अर्थात् इसके निःसरण में स्वाभाविकता है, आयास नहीं। यहीं इसे पर से भी पर आदिबीज माना गया है। एक विशेष यह है कि इसका वर्ण मध्याह्नकालीन सूर्य के सदृश माना गया है। इसे एक स्वरूप भी प्रदान किया गया है। यह पद्मासन में स्थित है। इसका मुकुट जाज्वल्यमान है। यह सुन्दर अलंकारों से युक्त है। शंख, कृपाण, शक्ति, धनुष, पाश, हल तथा मुसल इसके हाथों में है। यह धन तथा श्री प्रदान करनेवाला एवं स्फीतवाक माना गया है। सभी देवताओं द्वारा वन्दित है। इस प्रकार यजुर्वेद में वर्णित पुरुष के आकार से इसके आकार की तुलना के साथ ही साथ इसका आदि के द्वारा आगमिक स्वरूप भी प्रतिपादित है।[१०]

इसी भांति श्रीमन्नारायण से प्रणव की एकता बताते हुए यह भी प्रतिपादित किया गया है कि 'अ' परब्रह्म का द्योतक है। 'उ' लक्ष्मी का द्योतक है तथा 'म' जीवात्मा का बोध कराता है। इस प्रकार तीनों समवेत रूप से 'प्रणव' के ही द्योतक है। 'प्रवण' शब्द से 'प्रणव' करी उत्पत्ति बतायी गयी है। यह नियम उल्लिखित है कि जिस प्रकार 'पश्यक' से 'कश्यप' तथा 'हिंस' से 'सिंह शब्द की व्युत्पत्ति ग्राह्य होती है उसी प्रकार 'प्रवण' से वर्ण व्यत्यय द्वारा 'प्रणय' शब्द की सिद्धि होती है। अर्थात् नारायण में सर्वतोभावेन प्रवाहित होने के कारण 'प्रणव' नारायण ही है।[११]

महर्षि अत्रि ने भी 'ॐ' को एकाक्षर ब्रह्म माना है। ऐसी मान्यता है कि विष्णु के परम पद को प्राप्त करने की कामना करने वाला व्यक्ति 'ओंकार' रूपी रथ चढ़कर तथा अपने मन को सारथी बनाकर इस दिव्य ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। इसे त्रिस्वभाव तथा त्रिरात्मा भी कहा गया है। बल, वीर्य, तथा तेज- ये इसके त्रिरात्मक रूप है तथा कर्म, अनुग्रह और ध्यान- ये इसके त्रिस्वभात्त्व हैं। इस प्रकार विष्णु त्रिव्यूह है। और प्रणव उनका वाचक है।[१२] उस भाँति प्रणव सर्वव्यापी परमात्मा का ही स्वरूप माना गया है और इसकी उपासना से मनुष्य को सभी सिद्धियाँ प्राप्तव्य बतायी गयी है।

अष्टाक्षर मन्त्र का स्वरूप ***"ॐ नमो नारायणाय"*** है। इसमें ॐ बीज है। नकार 'कपिल' को अधिदैवत रूप में कहा गया है। यह ज्ञानप्रद तथा पाशाच्छेदन करने वाला है। इसका स्वरूप तीन सिर, छः भुजाएँ रक्त वर्ण, लम्बी दाढ़ी तथा ह्रस्वनाद माना गया है। दूसरे अक्षर मकार में विरंचि को अधिदैवत देवता माना गया है। इनका वर्ण श्वेत, शान्त रूप, दो भुजाएँ, रक्त कमल पर जटा वल्कलधारी के रूप में कल्पित किया गया है इनका नाद दीर्घ है। अग्रिम नकार प्रजापति को अधिदैवत मानता है। इसका वर्ण धूम्र, चार भुजाएँ, चतुर्मुख दाढ़ी से युक्त कमल की माला धारण किए स्फटिक आसन पर आसीन माना गया है। इसका नाद प्रांशु हैं। रकार का अधिदैवत रूप अग्नि है। इसका आकार वह्नि शिखा के सदृश है। श्यामवस्त्र में पुरुषरूप धारी

Vijana Bharati

इस व्यक्तित्व का नाद स्वरित हैं यकार शक्ति का प्रतीक है। यह प्रकृति से उत्पन्न होने वाला श्रीस्वरूपयुक्त कन्धे पर स्वर्णकुम्भ धारण किये हुए श्वेतवस्त्रधारी दो भुजाओं वाला तथा अनुदात्तनाद वाला है। यह सभी खजानों से घिरा हुआ, तीन रत्नों से युक्त, दिव्य ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला और धन सम्पत्ति से दरिद्रतारूपी अन्धकारों को नाश करने वाला है। यही परमात्मा का शक्ति- स्वरूप है, ऐसा आचार्यों का कहना है, णकार का अधिदैविक रूप आत्मा है। यह क्षेत्रज्ञ से उत्पन्न होता है। गोदुग्ध के समान इसकी आभा है। चतुर्भुजरूप वाला यह पुरूष है। अन्तिम यकार का अधिदैविक रूप प्राण है। यह निष्कल ध्यानरूप से सुशोभित ह्रस्वनाद वाला, सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाल, पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त है। इस प्रकार अष्टाक्षर मन्त्र की उपासना अधिदैविक रूप में की जाती है।[१३] ज्ञातव्य है कि इसके आठ अक्षर प्रणव को लेकर ही पूरे होते है। अतः प्रणव आदि बीज के रूप में इन प्रत्येक अक्षरों में अनुस्यूत है। इस मन्त्र के आठ अक्षरों में परमात्मा अर्थात् नारायण की व्याख्या की गयी है। - जिसका शरीर न होते हुए भी गति है, वह देव परमात्मा नारायण है। 'परमात्मा एव- पारमात्मिकः' कहकर पारमात्मिक भी कुछलोग कहा करते हैं। इस अष्टाक्षर के अधिदेवता नारायण है, गायत्री छन्द है, ऋषि सांकृत्यायन है। ब्रह्म स्वयं ही पाँच अङ्गोंवाला है। यह परमात्मा सभी सिद्धियों का प्रदाता है। मनुष्य लोग इसे 'श्रीकरम्' अर्थात् श्रेय प्रदान करने वाला कहते हैं।

नाम लोग 'मङ्गल्पकरम्' अर्थात् मङ्गल करने वाला कहते हैं। विष्णु की मन में भावना करके भक्तिपूर्वक निश्चल होकर प्रणवान्वित अष्टाकार मन्त्र का यथाविधि जप करना चाहिए।[१४]

किसी भी जप में संप्रदायानुरूप न्यास का विधान किया जाता है। न्यास का अभिप्राय है मंत्र के प्रत्येक अक्षर को साधक के अंग-प्रत्यंगों में परिकल्पित कर मंत्र के स्वरूप की मानसिक परिकल्पना करना। इससे एक ओर मन शुद्ध तथा केन्द्रित होता है और दूसरी ओर साधक अपने अंग-प्रत्यंग को मंत्र के लिए समर्पित करना है। 'काश्यप' के ज्ञानकांड में प्रणव के साथ अष्टाक्षर मन्त्र के न्यास का विधान बताया गया है। प्रणव स्वयं मननात्मक होने के कारण मंत्र है। इसका न्यास तीन प्रकार का माना गया है- सृष्टि, स्थिति तथा संहृति। सृष्टि की स्थिति में प्रणव सर्वप्रथम मूर्धा पर न्यास करने इसके पश्चात क्रमशः ललाट, नेत्र, नासिका, जिह्वा, हृदय, नाभि, गुह्य, चरणादि स्थानों पर न्यास किया जाता है। ये अष्टाक्षर न्यास सृष्टि न्यास कहे जाते है। इसके विपरीत पाद से प्रणव के न्यास का आरंभ करके विपरीत क्रम से मूर्धा तक अष्टाक्षर न्यास को संहति न्यास कहते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वप्रथम जठर में प्रणव का न्यास कर दूसरी बार दोनों पैरों में, तीसरी बार भुजाओं में, चौथी बार हृदय में, पांचवी बार दोनों नेत्रों में छठी बार सिर, सातवीं बार मुख पर और आठवीं बार दोनों कानों पर आदि से अंत तक प्रणव-युक्त अष्टाक्षरों का विन्यास स्थिति विन्यास कहलाती है। इस प्रकार प्रणव से सूक्ष्म रूप में आविर्भूत होने वाली तथा उसी में स्थित रहकर पुनः उसी (प्रणव)में तिरोहित होने वाली सृष्टि प्रक्रिया के संपादन द्वारा साधक जीवन वृत्त से अपने को उन्मुक्त करता है।[१५] महर्षि भृगु ने अपने ग्रंथ वाशाधिकार में प्रतिमा प्रतिष्ठा विधान के अन्तर्गत प्रतिमा में मातृका न्यास एवं मन्त्र न्यास का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है।

यहाँ मन्त्र के अधिकारी भेद पर भी विचार किया गया है। इस मन्त्र को स्त्री, शूद्र, अभक्त तथा अशिष्य जो एक वर्ष तक साथ में न रहा हो, उन्हें नहीं देना चाहिए, अर्थात् इन सभी की एक वर्ष तक सम्यक् परीक्षा कर दीक्षा देनी चाहिए। अन्यथा मन्त्र दान निष्फल हो जाता है।[१६]

प्रणव के विस्तृत विवेचनोपरान्त महर्षि मरीचि ने "अथ सावित्री कल्पम्" इस कथन के साथ गायत्री मंत्र पर गहन विचार करते हुए श्रुतिसम्मत गायत्री को चतुर्विंशत्यक्षरा कहा है। मरीचि का मानना है कि गायत्री का सविता देवता होने के कारण इसे सावित्री भी कहते हैं। इसके विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द और सविता अधिदेवता हैं।[१७] 'त्रिपदा गायत्री' अष्टाक्षरा तथा चतुष्पदा गायत्री षडक्षरा मानी गई है। जप के विधान में त्रिपदा तथा अर्चन क्रम में चतुष्पदा स्वीकृत है।[१८]

गायत्री का स्वरूप अग्निवर्ण, षट्कुक्षि, पंचशीर्ष, शुक्लमुख, कमलेक्षण, ऋग्वेद प्रथमपाद, यजुर्वेद द्वितीयपाद, सामवेद तृतीयपाद है। पृथ्वी चरण, पर्वत्त उरू, अंबर अस्थि, पूर्व दिशा पहली कुक्षि दक्षिण दिशा दूसरी कुक्षि, पश्चिम तीसरी, उत्तर चतुर्थ उर्ध्व पंचम और अधः षष्ठ कुक्षि कथित है। पुराण आंत्र, जगती दिव्यरूप, आकाश उदरांतर, छंदम् स्तनद्वय, धर्मशास्त्र जिह्वा, न्याय बाहु, गिरा का ग्रीवा, शब्दशास्त्र प्रथम शिर, शिखा द्वितीय, कल्प तृतीय, निरुक्ति चतुर्थ तथा ज्योतिष पंचम शिर माना गया है। अनल मुख, इंदुमंडल मुख, वायु श्वसन, नक्षत्रपंक्ति अलका, सहस्त्रकिरण मौलि, तारा कुसुम, नक्षत्रमाला हार सभी ग्रह रत्नविभूषण, ब्रह्मा मूर्धा, शिव शिखा, विष्णु आत्मा, वेदांत विमल

Vijnana Bharati

मन, वेद प्राण तथा मीमांसा चित्ररूप में चित्रित है।[19]

इसी स्थल पर प्रणव रूप गायत्री का ध्यान तीन तरह से बतलाया गया है। पूर्व संध्या में कौमारी रक्तवर्णा, हंसवाहिनी, अक्षसूत्र-यज्ञोपवीतकमण्डलुधारिणी, ब्रह्मदैवत सावित्री नामक गायत्री का ध्यान किया जाता है। इनका आवास वह्नि में होता है। मध्य संध्या में यौवनी, रूद्राक्ष-अर्धचन्द्रशूलधारिणी, श्वेतवर्णा, वृषभवाहिनी, रूद्रदैवत गायत्री नामक गायत्री का ध्यान मान्य है। इसका वास अंतरिक्ष में है। सायं सन्ध्या में लक्षणयुक्त श्यामवर्णा, सर्वाभरणभूषिता, शंखचक्र-धारिणी, गरूडवाहिनी विष्णुदैवत सरस्वती नामक गायत्री का ध्यान विहित है। इसका वास स्वर्ग में है। त्रिकाल सन्ध्या में तीनों रूपों का ध्यान क्रमशः ध्यातव्य है।[20]

इसके अनन्तर गायत्री के अक्षरन्यास (पादादिमूर्धान्त चौबीस अंगो में) वर्णो के रूप, उसके देवता तथा उनके फल का विस्तृत विवेचन किया गया है जो इस प्रकार है-

क्र.	*अंग*	*अक्षर*	*स्वरूप*	*देवता*	*फल*
१.	पादाङ्गुष्ठौ	तत	पीताभ	ब्रह्म	महापातकनाश
२.	अङ्गुलद्वय	स	श्यामाभ	प्रजापति	उपपातकनाश
३.	जङ्घाद्वय	वि	पिङ्गलाभ	सौम्य	माहापातक - नाश
४.	जानुद्वय	तुः	नीलाभ	ईश्वर	दुष्टपापग्रह रोगाद्युपद्रवनाश
५.	उरुद्वय	व	वह्निवर्ण	सौम्य	भ्रूणहत्यादि दोषनाश
६.	गुह्यदेश	रे	ज्वालारूप	बृहस्पति	आगाम्यागम्य पापना
७.	वृषण	णि	विद्युन्निभ	इन्द्र	अभक्ष्यभक्षण-दोषनाश
८.	कटिदेश	यं	हेमाभ	वैष्णवबीज	ब्रह्महत्यादि-सर्वपापनाश
९.	नाभि	भ	कृष्णाभ	अर्यमा	पुरुषतत्यादि-पापनाश
१०.	जठर	गों	रक्ता	सविता	गोहत्यादि-पापनाश
११.	स्तनद्वय	दे	श्यामाभ	त्वष्टा	स्त्रीहत्यादि पापनाश
१२.	हृदय	व	श्वेताभ	पूषा	गुरुहत्यादि पापनाश
१३.	कण्ठ	स्य	स्वर्णाभ	इन्द्र	कूटकृत पापनाश
१४.	वदन	धी	पद्मसंकाश	वायु	अभक्ष्यभक्षण-दोषपापनाश
१५.	तालु	म	पद्मरागाभ	वायु	अभक्ष्यभक्षण-दोषपापनाश
१६.	नासाग्र	हि	श्वेताभ	मित्रावरुण	सर्वपापनाश
१७.	चक्षुर्द्वय	धि	पुण्डरीकाभ	प्रजापति	प्रतिग्रहदोषनाश
१८.	भ्रूमध्य	यो	कपिलाभ	विष्णु	दुष्टपापनाश
१९.	ललाट पू०	नः	आदित्यवर्ण	इन्द्र	इन्द्रलोकप्रद
२१.	ललाट दू०	प्र	नीलश्याम	रुद्र	ईश्वरलोकप्रद
२२.	ललाट प०	चो	पीतवर्ण	ब्रह्मा	ब्रह्मलोकप्रद
२३.	ललाट उ०	द	शुद्ध- स्फटिकरूप	विष्णु	विष्णुलोकप्रद-
२४.	मूर्धा	यात्	हेमाभ	चतुर्मुख	सर्वसिद्धिप्रद

इस प्रकार मरीचि ने अत्यन्त स्पष्टरूप से गायत्रीमन्त्र का स्वरूप दिखलाया है और कहा गया है कि तीनों संध्याओं में जप किया जाना चाहिए। सावित्री-अध्ययन से आयु, श्री, ब्रह्मवर्चस, प्रजासमृद्धि और धनधान्यवृद्धि होती है। यह ऐहिक और आमुष्मिक फलदायक है। मंत्र-जाप करने वाला इस लोक में अभीष्ट प्राप्त कर अन्त में मुक्ति को प्राप्त करता है।[21]

महर्षि मरीचि ने मंत्रों, ऋष्यादिकों के स्मरण की जरूरतों की चर्चा करते हुए कहा है कि सभी मंत्रों में प्रत्येक के ऋषि, छन्द देवता का ध्यान कर ही उसका उच्चारण करना चाहिए। नहीं तो मंत्र-जप निष्फल हो जाता है। उसे असुर ग्रहण कर लेते है।[22] सर्वेषां मन्त्राणां प्रत्येकं ऋषिच्छन्दोऽधिदैवतं ध्यात्वोच्चार्य कारयेत्। अन्यथा निष्फलं भवति। असुरा गृह्णीयुः। महर्षि ने सन्ध्योपासना के उपायो में आने वाले मंत्रों के ऋष्यादि का विस्तार से वर्णन किया है। यथा- अग्नि मन्त्र के सूर्य ऋषि, गायत्री छन्द तथा अग्निदेवता है। 'ओमापइति शिरसः' के ब्रह्मा

Vijnana Bharati

ऋषि, अनुष्टुप छन्द, परमात्मा देवता निर्दिष्ट है। 'आया' त्वित्येस्य-वामदेव ऋषि अनुष्टुप जगती छन्द, गायत्री देवता, मित्रस्ये मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप छन्द, गायत्री देवता 'उत्तमे शिखरे' वामदेव ऋषि अनुष्टुप छन्द्र गायत्री देवता, 'सावित्री' मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द तथा सविता देवता वर्णित है।[२३] ऋषि आदि की आवश्यकता पर बल देते हुए उनका मानना है कि प्रायः सभी मंत्रों का ऋषि अंतर्यामी, छन्द गायत्री एवं नारायण देवता होता है।[२४]

वैखानसागम में प्रयुक्त मन्त्रों के प्रयोग के विषय में अपेक्षित अन्य बातों की चर्चा भी आवश्यक है। वैखानसागम-संहिताओं में वैदिक ऋचाओं, सूक्तों तथा साम का प्रयोग विविध क्रियाओं के अवसर पर मन्त्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विशेष रूप से इन मन्त्रों का प्रयोग प्रतिष्ठादि विविध प्रयोग के अवसर पर देखा जाता है। विमानार्चनकल्प का इकतालिसवाँ पटल नित्यार्चनविधि के लिए समर्पित है। यहाँ मन्त्रस्नान, आचमन, प्राणायाम, सावित्रीजय सन्ध्याविधि, देवतातर्पण द्वारा ब्रह्मयज्ञ करना स्वीकारा गया है। तत्पश्चात् 'प्रतद्विष्णुस्तपत' इति मन्त्र द्वारा देवालय गमन से आरम्भ कर विग्रहारधन की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध मन्त्रों द्वारा सम्पन्न कर 'सूर्यस्वे'। इस मन्त्र द्वारा कवाटबन्द तक की पूरी विधि वर्णित है।[२५] समूर्तार्चनाधिकरण में न्यूनाधिक्य रूप में यही क्रम निर्दिष्ट है।[२६]

सन्दर्भ :

१. ऋग्वेद- १/१५२/२, १०/५०/४.

२. गृह्यमंत्र एवम् उनका विनियोग, पृष्ठ १७

३. निरुक्तम् १/१२.

४. गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग, पृ.१८.

५. वैखानसस्मार्तसूत्र- १/९/४/१२.

६. विमानार्चकल्प पटल- ८३.

७. विमानार्चकल्प पटल- ८२.

८. विमानार्चनकल्प पटल- ८३

९. विमानार्चकल्प पटल ८३.

१०. अथातोऽष्टाक्षरकल्पं व्याख्यास्यामः। अयं मन्त्रः साक्षाद्विष्णुमुखात् च्युतः। ओंकार प्रथममादिबीजं परमात्मिकं तरुणार्कवर्ण सहस्रशीर्ष सहस्राक्षं सहस्रबाहु सहस्रपाद श्रीवत्साङ्कतोरस्कं शङ्खासिशक्तिसारङ्गपाशहलमुसलयुतं वसुप्रदं जाज्वल्यमानमुकुटं दिव्याभरणमण्डितं पद्मासनस्थितं दीर्घनादं सर्वदेवनमस्कृतं परमपुरुषाधिदैवतम्। एतन्मंत्रं प्रमाणमिति विज्ञायते। काश्यपज्ञानकाण्डे, अध्याय १०६ पृ. १७२.

११. आगमकोश भाग ३, वैखानस आगम, पृष्ठ ११३, प्रकाशित, कल्पतरु रिसर्च अकादेमी, बंगलौर।

१२. ज्ञानयोगक्रियाचर्या प्रायश्चितं प्रवक्ष्यते।
ओमित्यकाक्षरं ब्रह्म प्रथमं परिपठ्यते।।
वेदास्संप्रणमन्त्येनं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत्।
ओंकाररथमारुह्य मनः कृत्वा तु सारथिम्।।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी याति विष्णोः परं पदम्।
एवं प्रणवभूतस्य ज्ञानं दिव्यमिदं विदुः।।
भगवतो बलेनेति त्रिस्वभावस्त्रिरात्मनः।
बलं वीर्यं तेज इति त्रिरात्मा गुणसंस्थितः।।
कर्मणानुग्रहे ध्यानं त्रिस्वभाव इति स्मृतम्।
बलादिमन्त्रसिद्धेन षडगुणा निरतेन च।।
पञ्चव्यूह चतुर्व्यूहमन्त्रसिद्धस्समाधिना।
व्यूहे सत्योच्युतो रूपो निरुद्ध इति मन्त्रतः।।
त्रिव्यूह इति निर्दिष्ट ओंकारो विष्णुरव्ययम्।
भगवद्वाचकाः प्रोक्ताः प्रवृंते परस्तथा।।
समूर्तार्चनाधिकरण
परिशिष्ट, अनुबन्ध (क), तृतीयाध्याय, पृ. ४८१-८२

१३. ज्ञानकाण्ड अध्याय - १०७

१४. ज्ञानकाण्ड अध्याय - १०८

१५. ज्ञानकाण्ड अध्याय - १८

१६. ज्ञानकाण्ड अध्याय - १०७

१७. विमानार्चनकल्पपटल - ८२

१८. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

१९. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२०. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२१. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२२. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२३. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२४. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२५. विमानार्चनकल्पपटल - ८४

२६. समूर्तार्चनाधिकरण अध्याय - ४०

Vijnana Bharati